REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 10 | ISSUE - 10 | JULY - 2021

भारत में भूमि उपयोग वर्गीकरण प्रणाली : एक पुनरावलोकन

डॉ. देवेन्द्र प्रताप मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
मदन मोहन मालवीय पी. जी. कालेज, भाटपार रानी

भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययन की प्रासंगिकताः–

किसी मानव समुदाय के सामाजिक–आर्थिक विकास का प्रतिबिम्बन वहाँ के भूमि उपयोग प्रतिरूप से होता है। विद्यमान भूमि उपयोग न सिर्फ पूर्ववर्ती पीढ़ी के मूल्यों–मान्यताओं, लक्ष्यों एवं सही अथवा गलत वरीयताओं एवं नीतियों का परिचायक होता है, अपितु उसकी विद्यमान दशाएँ एवं प्रवृत्तियाँ विकास के भावी स्वरूप एवं अभिवृद्धि की संभावनाओं तथा सीमाओं का भी संकेत देती हैं। अतः किसी क्षेत्र के ग्रामीण विकास सम्बन्धी अध्ययन में वहाँ के भूमि उपयोग प्रतिरूप एवं उसकी परिवर्तनशील प्रवृत्तियों का विश्लेषण अत्यन्त समीचीन है (सिंह, जगदीश, 1997,पृ0 02)। **ब्रायंट** के अनुसार, एक विकास–पथ विशेष को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु जैव–भौतिक पर्यावरण की क्षमता मात्र को, विकास का पैमाना मानने की बात पुरानी पड़ चुकी है। निस्संदेह जैव–भौतिक पर्यावरण विकास का आधार है, परन्तु इसके सांस्कृतिक एवं आर्थिक आयाम भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। अस्तु टिकाऊ या पोषणीय भूमि उपयोग का एक प्रारूप, जो किसी क्षेत्र या समुदाय विशेष हेतु उपयुक्त है, अनिवार्यतः अन्य क्षेत्रों के लिये भी उपयुक्त नहीं हो सकता है। अतः क्षेत्र विशेष के विकास के लिए तद्नुरूप भूमि उपयोग प्रारूप का होना अपरिहार्य है।

प्राकृतिक संसाधनों में भूमि अति महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक संसाधन है। मानव के प्रत्येक क्रिया–कलाप एवं उसकी मूलभूत और प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसी संसाधन से होती है। मनुष्य की अन्य बहुत सी अन्य आवश्यकताएँ भी इसी से पूरी होती हैं। आखेटीय व्यवस्था के उपरान्त मानव सभ्यता के विकास के प्रथम सोपान से लेकर वर्तमान तक अनेकानेक वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं तकनीकी सुविधाओं से सम्पन्न मानव सभ्यता के मूल में भूमि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मानव प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से सामंजस्य स्थापित करते हुए भूमि संसाधन का अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयास करता है। यही कारण है कि किसी स्थान विशेष के भूमि उपयोग की अवस्थाएँ उस क्षेत्र की तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की द्योतक होती हैं। भूमि उपयोग एक गत्यात्मक तत्व है, जो भौतिक दशाओं में परिवर्तन तथा मानव के सामाजिक–आर्थिक विकास, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के अनुरूप परिवर्तित, परिष्कृत एवं परिमार्जित होता रहता है। यही कारण है कि किसी भी क्षेत्र का भूमि उपयोग उस क्षेत्र में निवास करने वाले मानव समुदाय की बौद्धिक क्षमता तथा आर्थिक–सामाजिक एवं राजनीतिक विकास स्तर के साथ ही उस क्षेत्र विशेष में व्याप्त भौतिक वातावरण की विशेषताओं का सूचक भी होता है (वर्मा, एस0एस0, 1997, पृ0 24–32)।

भूमि उपयोग का स्वरूप मानव सभ्यता के विकास और मानव की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित, परिष्कृत एवं परिमार्जित होता रहा है। यह परिवर्तन कृषि विकास और उसकी अवस्थाओं के रूप में परिलक्षित हुआ है और होता रहेगा। कृषि कार्य की विविधता एवं विशिष्टता भूमि उपयोग के उस विकास कार्य एवं क्रम को

व्यक्त करती है, जो व्यक्ति के जीवनयापन की आवश्यकताओं से लेकर उसके आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास को पूर्णतया प्रभावित किये हुए हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के जन–जीवन में भूमि उपयोग का मुख्य अर्थ कृषि कार्य से है, जो ग्रामीण क्षेत्र के संविकास की कुंजी है। मानव पृथ्वी पर अपनी उत्पत्ति के साथ अपने जीवन–आधार, निर्वहन एवं स्थायित्व के लिये भूमि पर ही निर्भर है। मानव द्वारा भूमि संसाधन के सामंजस्यपूर्ण व सुविचारित उपयोग पर ही मानव एवं उसके समाज की खुशहाली निर्भर है, जबकि पेट की भूख निश्चित तौर पर मानव समाज के लिये एक चुनौती है। इसीलिये संसाधनों के उचित दोहन के लिये भूमि के वर्तमान उपयोग का आकलन करना आवश्यक होता है (Giri, H.H., 1976, p.IX)।

आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में सभी उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग को ध्यान में रखते हुए सतत नवीन तकनीकी ज्ञान एवं संयन्त्रों का अनुसंधान एवं विकास किया जा रहा है। भूमि उपयोग भी इस वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों से पूर्णतया प्रभावित है। बैनजेटी (1972, pp. 1105-1106) के अनुसार 'भूमि उपयोग' प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक उपादानों के संयोग का प्रतिफल है। जब तक किसी क्षेत्र विशेष में भूमि उपयोग प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के अनुरूप रहता है, अर्थात मानवीय क्रिया–कलाप प्राकृतिक कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं, तब तक भूमि का आर्थिक महत्व कम एवं मानव का जीवन स्तर निम्न होता है। कालक्रम में जब भूमि उपयोग प्रारूप के निर्धारण में मानवीय भूमिका निर्णायक हो जाती है एवं भूमि उपयोग में आर्थिक संसाधनों का विनियोजन अधिक होने लगता है, तब उस अवस्था में भूमि की संसाधनता में वृद्धि हो जाती है और मानव जीवन का आर्थिक स्तर अपेक्षाकृत उच्च हो जाता है।

भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक तथा मानवीय पर्यावरण के समन्वित प्रभाव को अंगीकार करते हुए अनुचिन (Anuchin, V.A., pp. 52-54) ने **'सामाजिक–भौगोलिक वातावरण'** शब्दावली का प्रयोग किया है। भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों में भौतिक कारक जैसे–उच्चावच, धरातलीय बनावट, जलवायु, मिट्टी आदि का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त कारकों की विभिन्न दशाओं से प्रभावित भूमि पर मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विशिष्ट प्राविधिकीय ज्ञानों, नवीन अनुसन्धानों, वैज्ञानिक उपकरणों आदि द्वारा सांस्कृतिक भू–दृश्यावली का विकास करता है और उसे परिशोधित एवं परिमार्जित करता है।

भूमि उपयोग की गत्यात्मकता बाजारीय अर्थ–व्यवस्था से निर्देशित होती है। वास्तव में आर्थिक शक्तियों जैसे माँग और पूर्ति के अन्तर्सम्बन्धों के सन्दर्भ में स्वतः दूसरी वस्तुएँ सामान्य भूमि उपयोग के लिये कारक रूप में प्रतिष्ठित हो जाती हैं। प्रायः सभी संस्थागत कारक–संस्कृति, रीति–रिवाज, सामाजिक संरचना, मनोवैज्ञानिक एवं आदर्शजन्य वैचारिक भावना, सामूहिक क्रिया–कलाप एवं भूमि स्वामित्व प्रारूप, भूमि उपयोग को एक विशेष सीमा तक प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक उपयोग में भूमि संसाधन की उपलब्धता, वहाँ के वर्तमान प्राविधिकीय विकास स्तर का परिचायक है, जो वास्तव में माँग और आपूर्ति के तीव्रतम प्रभाव का द्योतक भी है। बारलो (1961, p. 228) के शब्दों में यह माँग और आपूर्ति तत्वों का अन्तर्सम्बन्ध ही है, जो किसी भी स्थान के भूमि उपयोग में भौतिक तथा जैविक ढाँचे द्वारा मुखरित होता है।

क्षेत्र विशेष में भूमि उपयोग की गहनता और उसमें कालिक परिवर्तन के विश्लेषण द्वारा उसके विगत एवं वर्तमान विकास स्तर का ज्ञान हो सकता है, साथ ही भावी विकास सम्भावनाओं का आकलन किया जा सकता है। चूँकि भूमि की पूर्ति लगभग निश्चित है तथा भूमि पर जनसंख्या का भार दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, अतः इसके विवेकपूर्ण तथा अभीष्ट उपयोग की आवश्यकता है। भूमि संसाधन उपयोग भूमि समस्या एवं योजना सम्बन्धी विवेचना की धुरी है। फलस्वरूप भूमि के सदुपयोग एवं दुरूपयोग के मूल्यांकन तथा उसके आधार पर आदर्श भूमि उपयोग के निर्माण हेतु यह आवश्यक है कि विभिन्न क्षेत्रों में जिस ढंग से विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भूमि का उपयोग किया जा रहा है, उसकी व्याख्या व समीक्षा की जाए।

किसी भी क्षेत्र में भूमि उपयोग संवर्गों के संयोजन से परिसीमित भूमि उपयोग प्रदेश न सिर्फ उस क्षेत्र विशेष कि भूमि उपयोग के स्वरूप एवं चरित्र का उद्घाटित करते हैं, वरन उस क्षेत्र के भूमि उपयोग के भावी नियोजन के लिए भी एक सम्भावित पुष्ट आधार प्रदान करते हैं। भूमि उपयोग संवर्गों के कोटिक्रम निर्धारण से किसी भी क्षेत्र के भूमि उपयोग के वितरण प्रतिरूप को तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में सरलता से जाना जा सकता है। भूमि उपयोग क्षेत्र–तीव्रता एवं विस्तार, भूमि उपयोग मानचित्रण, (नेटमों मोनोग्राफ), राष्टीय एटलस एवं थिमैटिक मानचित्रण संगठन, कलकत्ता) अव्यवस्थित व अनियंत्रित विकास की दशा में विद्यमान भूमि उपयोग और उसमें होने वाले परिवर्तन की जानकारी अति आवश्यक है (Yadav, H Lal, 1991, P45)

सामान्य भूमि उपयोग के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य किसी क्षेत्र विशेष के निवासियों द्वारा उपलब्ध भूमि के उपयोग अथवा दुरूपयोग का ज्ञान प्राप्त करना होता है। भविष्य की किसी भी आयोजना के लिये क्षेत्र विशेष के भूमि उपयोग का अध्ययन आवश्यक होता है। इस तरह के अध्ययन का उद्देश्य सिर्फ उन क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, जहाँ भूमि का सकारात्मक उपयोग हो रहा है, बल्कि इसमें उन क्षेत्रों का भी आकलन आवश्यक है, जिनका नकारात्मक या अनुत्पादक उपयोग हो रहा है अथवा जो अज्ञात या उपेक्षित है।

भूमि उपयोग वर्गीकरण की आवश्यकता

भूमि उपयोग का वर्तमान प्रतिरूप, आज की स्थिति में क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम हो या न हो, परन्तु क्षेत्र की वास्तविक भूमि उपयोग क्षमता का अध्ययन भविष्य की आयोजना के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। बिना वर्तमान भूमि उपयोग की जानकारी के किसी क्षेत्र का नियोजन पंगु हो जाता है। भूमि उपयोग प्रतिरूप का ज्ञान उस क्षेत्र के नियोजन की पूर्वापेक्षा होता है। क्षेत्र के लिए विकास की योजना बनाने के पूर्व क्षेत्र के वर्तमान भूमि उपयोग का विस्तृत निरीक्षण करने के लिये भूमि का विविध उपयोगों के आधार पर वर्गीकरण आवश्यक है। भूमि उपयोग के वर्गीकरण द्वारा वर्तमान भूमि के उपयोग को समझा जा सकता है। भूमि उपयोग वर्गीकरण से भूमि के वर्तमान उपयोग के विभिन्न घटकों/वर्गों का विश्लेषण कर भविष्य के लिये अभीष्ट भूमि उपयोग आयोजना का निर्माण सार्थक हो सकता है। कृषि भूमि संसाधन में गुणात्मक सुधार सहित वन भूमि को संरक्षित रखना एवं बागों, उपवनों, झाड़ियों आदि के समापन को रोका जा सकता है। वर्गीकरण द्वारा भूमि के सदुपयोग को बढ़ाने तथा दुरूपयोग को रोकने में मद्द मिलती है। अपघटित भूमि का सम्बर्धन कर उसे उत्पादक बनाया जा सकता है। बंजर भूमि को सुधार एवं सम्वर्द्धित कर कृषिगत भूमि में परणित किया जा सकता है। बढ़ती जनसंख्या के लिये अधिवास, उद्योग एवं यातायात मार्गों के निर्माण के लिये अकृष्य भूमि के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा सकता है। भूमि उपयोग के अनेक वर्गों से वर्तमान भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन कर भविष्य के लिये अपार सम्भावनाएँ तलाशी जा सकती हैं।

भूमि वर्गीकरण से यह ज्ञात हो जाता है कि कौन सी और कितनी भूमि किस उपयोग में लायी जा रही है। उसके सदुपयोग और दुरुपयोग का ज्ञान हो जाता है। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, नगरीकरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों में भूमि का उपयोग असंतुलित हो गया है। भूमि उपयोग की अज्ञानता के कारण भूमि का दुरुपयोग बढ़ रहा है। भूमि उपयोग की कुशलता और अकुशलता पर ही विकास और विनाश दोनो सम्भव है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि विश्व की बहुत कम भूमि ऐसी है जो सभी उपयोगो के लिए सर्वोत्तम हो। इसी प्रकार ऐसी भूमि भी बहुत कम है जिसका कोई उपयोग न हो सके। तात्पर्य यह कि ऐसी बहुत भूमि है, जिसका सभी कार्यो के लिए नहीं वरन भिन्न भिन्न कार्यो के लिए उपयोग हो सकता है। अर्थव्यवस्था के सर्वोत्तम प्रभावों के लिए क्षेंत्र में विद्यमान भूमि की उपलब्ध क्षमता का अधिकतम उपयोजन तथा विविध उपयोगों में इसका वैज्ञानिक एवं संतुलित आबंटन क्षेत्रीय विकास नियोजन की महती आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति भूमि उपयोग वर्गीकरण के बिना नहीं हो सकती। किसी भी क्षेत्र में भूमि उपयोग संवर्गों के संयोजन से परिसीमित भूमि उपयोग प्रदेश न सिर्फ उस क्षेत्र विशेष के भूमि उपयोग के स्वरूप एवं चरित्र को ही उद्घाटित करता है वरन उस क्षेत्र के भूमि उपयोग के भावी नियोजन के लिए एक सम्भावित पुष्ट आधार प्रदान करते हैं।

किसी क्षेत्र में मानव समुदाय की खाद्य आवश्यकताओं के अतिरिक्त आवास, परिवहन, उद्योग, मनोरंजन आदि आवश्यकताओं की पूर्ति भूमि के उपयोग द्वारा ही होती है। तात्पर्य यह है कि किसी क्षेत्र विशेष में उपलब्ध भूमि का विविध कार्यों में उपयोग होता है। इस उपयोग की दृष्टि से जब भूमि को वर्गीकृत करते हैं, तो उसे भूमि उपयोग वर्गीकरण कहते हैं, जो विविध प्राकृतिक व मानवीय कारकों के सामुच्चयिक प्रभाव का प्रतिफल होता है। स्पष्ट है कि जितने कार्यों में भूमि का उपयोग होगा, भूमि उपयोग के उतने ही वर्ग होंगे। चूँकि भूमि पर किये जाने वाले कार्यों में बहुलता, विविधता एवं जटिलता होती है, इसलिये सूक्ष्म स्तर पर भूमि उपयोग वर्गीकरण में संवर्गो की सूची बहुत लम्बी हो जाती है। ऐसे सूक्ष्म वर्गों का वर्गीकरण एवं मानचित्रण ग्राम स्तर पर ही सम्भव होता है। अध्ययन की इकाई बड़ी होने पर इन छोटे–छोटे कुछ वर्गों को उपयोग की समरूपता के आधार पर एक में मिलाकर सामान्यीकरण किया जाता है, जिससे संवर्गों की संख्या कम हो जाती है। भूमि उपयोग का यह सामान्यीकृत वर्गीकरण ही, सामान्य भूमि उपयोग वर्गीकरण कहलाता है।

भूमि उपयोग वर्गीकरण प्रणाली–

देश में भूमि उपयोग की कोई एक मानक वर्गीकरण प्रणाली विकसित नहीं हो पायी है। राष्ट्रीय एटलस एवं थिमेटिक मानचित्रण संगठन (NATMO) अखिल भारतीय मृदा एवं भू–उपयोग सर्वेक्षण विभाग, आर्थिक और सांख्यिकी निदेशालय, कृषि विभाग जैसे कुछ संगठनों ने भूमि उपयोग वर्गीकरण एवं मानचित्रण की अपनी पृथक–पृथक योजना विकसित की है। दूरस्थ–संवेदन तकनीक का आज ऐसे कार्यों हेतु प्रभावशाली तरीके से प्रयोग किया जा रहा है, जिसमें भू–अवलोकन आधारित सर्वेक्षण करके राष्ट्र के भू–संसाधनों के वर्तमान उपयोग की सही सूची प्राप्त की जा रही है। देश के विभिन्न विभागों/संगठनों द्वारा भूमि उपयोग के वर्गीकरण का विवरण निम्नवत है–

(1). अखिल भारतीय मृदा एवं भूमि उपयोग सर्वेक्षण द्वारा वर्गीकरण (1970)

अ–वन क्षेत्र (F):– F_1 क्षत्रक रहित, F_2 विरल वन, F_3 मध्यम सघन वन, F_4 पूर्णतः क्षत्रक युक्त सघन वन।
ब–कृषित क्षेत्र(C):–C_1 एक फसली भूमि, C2 दो फसली भूमि, C_3 तीन फसली भूमि,
स–वेदिकायुक्त भूमि (T):–T_1, निम्न कोटि मेड़बन्द भूमि, T2 - खराब वेदिका भूमि, T_3- सकरी वेदिका भूमि।
द–बंजर भूमि (W):– W_1 कृषि के योग्य, W2 कृषि के अयोग्य।
य–चारागाह भूमि (P):–P - चारागाह वाली भूमि, H - सूखी घास वाली भूमि, P_1 - नई झाड़ियों वाली भूमि, P_2 अच्छी उगी हुई झाड़ियों वाली भूमि, T- कटीले पौधे एवं क्षत्रक युक्त झाड़ियों वाली भूमि।

(2). नेशनल एटलस एण्ड थिमैटिक मैपिंग अर्गनाइजेशन (NATMO) द्वारा वर्गीकरण (1980)

1–कृषिगत भूमिः– 1.1 सिंचित कृषि भूमि, 1.2 असिंचित भूमि, 1.3 वृक्षारोपण
2–वन :–2.1 आरक्षित वन, 2.2 संरक्षित वन, 2.3 अवर्गीकृत वन
3– अकृषित भूमिः– 3.1 नगर, 3.2 खदान, 3.3 वृक्षयुक्त अधिवास
4–चारागाहः–4.1 घास वाली भूमि, 4.2 झाड़ियाँ
5–अनुत्पादक भूमिः–5.1 बालू, 5.2 चट्टानी, 5.3 खारीय, 5.4 उत्खात भूमि, 5.5 हिम क्षेत्र

(3). नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी अर्गनाइजेशन (NRSA) द्वारा वर्गीकरण (1995)

1– निर्मित भूमिः– 1.1 नगरीय, 1.2 ग्रामीण, 1.3 सड़क एवं रेलवे।
2–कृषिगत भूमिः–2.1 फसली भूमि, 2.2 परती भूमि, 2.3 स्थानान्तरण एवं वेदिकायुक्त, 2.4 आर्द्र परती भूमि, 2.5 पौधरोपण वाली भूमि
3–वन भूमिः–3.1 सदाबहार वन, 3.2 पतझड़ वन, 3.3 मिश्रित वन, 3.4 झाड़ियों वाली भूमि।
4–जलाशयः–4.1 नदियाँ, 4.2 झील एवं तालाब, 4.3 जलागार, 4.4 लैगून, 4.5 एस्चुअरी, 4.6 समुद्र
5–बंजर भूमिः–5.1 बलुई भूमि, 5.2 चट्टानी, 5.3 कृषि योग्य बंजर।
6–अन्य भूमिः–6.1 घास वाली भूमि, 6.2 वर्फाच्छादित, 6.3 सरिता बालू

(4). भारत सरकार के सांख्यिकीय विभाग द्वारा वर्गीकरणः

राजस्व आंकड़ों के आधार पर भारत सरकार के सांख्यिकीय विभाग द्वारा भूमि उपयोग की तालिका निम्न वर्गीकरण में प्रतिवर्ष प्रस्तुत की जाती है। कृषि सांख्यिकी समन्वय तकनीकी समिति (TCCAS) ने 1950 में प्रमाणिक वर्गीकरण की संस्तुति की, जिनके वर्गों की समान परिभाषा सम्पूर्ण भारत में स्वीकार की गयी। बाद में Committee on Improvement of Agricultural Statistics द्वारा इसकी परिभाषा और व्याख्या में संशोधन किया गया। समिति द्वारा भूमि को 9 वृहद संवर्गों में विभक्त किया गया है। सम्प्रति विभिन्न जिलों के अर्थ एवं संख्याधिकारी कार्यालयों से प्रकाशित जिला सांख्यिकीय पत्रिकाओं में, विभिन्न मण्डलों से प्रकाशित मण्डल सांख्यिकीय पत्रिकाओं में, अर्थ एवं संख्या प्रभाग राज्य नियोजन संस्थान, नियोजन विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित सांख्यिकी सारांश/डायरी में तथा भारत सरकार सांख्यिकी वार्षिक पुस्तिका में वर्गीकरण के इसी प्रारूप में भूमि उपयोगिता के आंकड़े प्रकाशित किये जाते हैं।

i. भौगोलिक क्षेत्र– सर्वेक्षण विभाग द्वारा आंकलित क्षेत्रफल	
ii. भूमि उपयोग से संबंधित सांख्यिकीय क्षेत्रफल	
अ–वन भूमि	(1) वन
ब–कृषि के लिए अप्राप्य भूमि	(2) अकृष्य उपयोग में लगी भूमि
	(3) बंजर और कृषि के अयोग्य भूमि
स–अन्य प्रकार की कृषि के अयोग्य भूमि	(4) स्थायी चारागाह
	(5) विभिन्न बाग बगीचों में लगी भूमि
	(6) कृषि योग्य बंजर भूमि
द–कृषिगत भूमि	(7) नई परती के अतिरिक्त
	(8) नई परती
	9. शुद्ध बोयी गयी भूमि अ–सम्पूर्ण बोयी गयी भूमि ब–एक बार से अधिक बोयी गयी भूमि
iii. सिंचत क्षेत्र	
iv. सम्पूर्ण सिंचित क्षेत्र	

भूमि उपयोग के संवर्गों के अर्थ :–

1. वन भूमि

इस वर्ग के अन्तर्गत वे सभी वन क्षेत्र आते हैं जा चाहे सरकारी अथवा निजी अधिकार में हों। इसमें कुछ वन सरकार द्वारा संरक्षित कर दिया गया है तथा कुछ अवर्गीकृत हैं। कुछ वनों की सुरक्षा सरकार करती है किन्तु वे संरक्षित नहीं हैं। इस वर्ग में ऐसी भूमि भी शामिल होती है, जो वन विभाग की होती है, भले ही उस पर वन हों या न हों। मैंदानी भागो में जहां कृषि की प्रधानता है, वहां वन दिखायी तो नहीं देते हैं, पर सरकारी अभिलेख में वन भूमि होती है। वनों में कई प्रकार के वृक्ष होते है ,उनकी लकड़ी विभिन्न विशेषताओं वाली होती है तथा वन भी कई प्रकार के होते हैं। अतः वन भूमि को भी कई आधारों पर उपवर्गो में वर्गीकृत करते हैं। (अ) उच्च वन के अन्तर्गत बड़े पेड़ो वाले वन वाले वनो को शामिल किया जाता है। इनको पुनः कोणधारी, चौड़ी पत्ती वाले, पर्णपाती और मिश्रित वन, आदि वर्गो में विभक्त किया जाता है। (ब) गुल्म वन ऐसे होते हैं, जो प्रति कुछ वर्षो में काट दिये जाते है। (स) झाड़ झंखाड़ के अन्तर्गत छोटे छोटे वृक्ष, झाड़ियां आती हैं, जो काटने योग्य नहीं होती हैं। (द) ऐसे वन जो काट दिये गये हों परन्तु वहाँ पुनः वृक्षारोपण नहीं हुआ हो। भू–दृश्य का महत्वपूर्ण जीवीय संसाधन है, जिसकी संसाधनता मानव की आवश्यकताओं व योग्यताओं में निहित है। सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से वनों का सर्वाधिक महत्व है। मानव की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त मृदा अपरदन, वातावरण संतुलन, पारिस्थैतिकी संतुलन, वातावरण परिष्कार हेतु वनस्पतियों की भूमिका अति महत्वपूर्ण है,

2. ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमिः–

इस श्रेणी में वे सभी भूमि सम्मिलित हैं, जो बंजर हैं तथा कृषि के योग्य नहीं हैं। पर्वतीय, पठारी व रेगिस्तानी भूमि इस कोटि में आती हैं। अत्यधिक लागत के बिना ऐसी भूमि को फसलों के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता है। बंजर व कृषि अयोग्य भूमि कृषि क्षेत्र के मध्य में भी हो सकती हैं और कृषि क्षेत्र से अलग हटकर भी हो सकती है। इसे कृषि के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता, क्योंकि इसमें कुछ ही प्रतिशत भूमि कृषि योग्य होती है। इसमें लगभग 20 प्रतिशत से भी कम भूमि पर खेती की जा सकती है।

3. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि

इस श्रेणी में उन भूमियों को सम्मिलित किया जाता है, जो ग्रामीण व नगरीय अधिवास, एकाकी भवन, सड़क, रेलमार्ग, अन्य रास्ते आदि के प्रयोग में है। इसी प्रकार वे भूमियां जो जल प्रवाहों, नदियों या नहरों के अन्तर्गत हैं, भी इस श्रेणी में सम्मिलित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य गैर कृषि प्रयोगों की भूमियां भी इसके अन्तर्गत सम्मिलित होती हैं। (करुणेश प्रताप सिंह, 2000, पृ0 5)। इस प्रकार इस श्रेणी की भूमि का तात्पर्य उस भूमि से है, जिसे वैज्ञानिक अनुसंधानों, नवीन कृषि यंत्रों, सिंचाई के साधनों, अभिनव तकनीकों एवं अन्य सुविधाओं के उपरान्त भी कृषि के लिए प्रयोग मे नहीं लायी जा सकती है (Lilawati, 2001, pp. 84-85)। इसके अन्तर्गत उन भू–भागों को भी रखा गया है, जो भूमि मृदा के दृष्टिकोण से उपजाऊँ होते हुए भी कृषि के लिये उपलब्ध नहीं होती है। इस प्रकार का भू–क्षेत्र अनिवार्य रूप से मानव कल्याण हेतु निर्मित विकास संरचनाओं के अन्तर्गत पाया जाता है। ऐसी भूमि स्थायी रूप से कृषि के लिये अनुपलब्ध रहती है, अथवा कृषि कार्य हेतु इसको प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है।

4. चारागाह एवं अन्य पशुचारण की भूमि–

वस्तुतः इस श्रेणी वाली भूमि को स्थायी चारागाह एवं अन्य चराई वाली भूमि के नाम से वर्गीकृत किया गया है। इसे गोचर भूमि भी कहते है। सभी घास के मैदान जो पशुओं की चराई के लिए स्थायी रूप से प्रयोग किये जाते हैं, इसके अन्तर्गत आते हैं। ऐसी भूमियाँ घासस्थली हो सकती हैं अथवा स्थायी चारागाह के रूप में हो सकती है। ग्राम समूहों/समुदाय के चारागाह भी इसी श्रेणी में आते हैं। पर्वतीय भागों में ऐसी भूमि अधिक होती है, जबकि मैदानी भागों में कृषि के कारण ऐसी भूमि बहुत कम होती है।

5.उद्यान, वृक्षों तथा झाड़ियों वाली भूमि–

इस कोटि में कृषि योग्य वे सभी भूमियां सम्मिलित की जाती हैं, जिन्हें शुद्ध कृषि क्षेत्र में सम्मिलित नहीं किया जाता है, किन्तु कतिपय सुधारों के पश्चात कृषि हेतु प्रयोग में लायी जा सकती है। इसके अन्तर्गत उद्यानों, छोटे पेड़, छप्पर छाने वाली घासें, बांस की झाड़, झाड़ जो जलाने के काम आती है, सम्मिलित किये जाते हैं, जो भूमि के उपयोग वितरण में उद्यान/बाग के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं होती हैं।

6. कृषि योग्य बंजर भूमि–

इस श्रेणी में वह भूमि सम्मिलित है, जो कृषि के लिए उपयुक्त होते हुए भी कुछ कारणों से उसमें कृषि नहीं की जाती है। इसमें कुछ परती भूमि या कुछ झाड़ी से ढका क्षेत्र अथवा कुछ जंगली भाग, जिसका कोई प्रयोग नहीं किया जाता है, भी सम्मिलित होता है। दूसरे शब्दों में यह वह भूमि है जो कृषि के लिए उपलब्ध है, परन्तु जिस पर वर्तमान वर्ष और पिछले पांच वर्षों या उससे अधिक समय से फसल नहीं उगायी गयी है। भौतिक एवं सामाजिक आर्थिक प्रतिकूलताओं के कारण ऐसी भूमि पर कृषि करना छोड़ दिया जाता है (Singh Jasbir, 1974, p 105)। सम्बन्धित कमियों के निवारण के पश्चात ऐसी भूमि पर कृषि की जा सकती है। जल लग्नता, उर्वरता ह्रास, अनार्द्रता जैसी प्राकृतिक कारणों या विवाद, किसान की अक्षमता एवं विवशता, सिंचाई के साधनों का अभाव, नदियों के मार्ग परिवर्तन से रेत की मोटी परत बिछ जाने आदि कारणों से बेकार पड़ी भूमि इस श्रेणी में आती है। ऐसी भूमियां परती हो सकती हैं या झाड़ियों और जंगल वाली हो सकती हैं। यह भूमि किसी अन्य प्रयोग में नहीं लायी जा सकती है। जिस भूमि कम से कम एक बार खेती की गयी हो, परन्तु पिछले पांच या अधिक वर्षों से खेती नहीं की गयी हो, वह भूमि भी इस श्रेणी में आती है। जब कोई भूमि बिना किसी अन्य उपयोग में लाये एक वर्ष तक परती छोड़ दी जाती है तो उसे नई परती या चालू परती कहते हैं। यदि उसे एक वर्ष से अधिक व पांच वर्ष से कम समय तक परती छोड़ दिया गया होता है तो उसे पुरानी परती या अन्य परती कहते हैं, परन्तु ज बवह भूमि पाँच वर्ष या उससे अधिक समय तक परती छोड़ दिया गया हो तो वह भूमि कृष्य बंजर की श्रेणी में गिनी जाने लगती है। (Land Record Manual, 1960, p.63)।

7. वर्तमान या नई परती–

उर्वरता की पुनः प्राप्ति, नमी संचय हेतु अथवा आर्थिक कारणों से किसी फसली वर्ष में बिना कुछ बोये ही छोड़ दी गयी भूमि वर्तमान परती भूमि कहलाती है। इसे नयी परती या चालू परती भी कहते हैं, क्योंकि यह भूमि चालू/वर्तमान वर्ष में परती रहती है। वस्तुतः भूमि उपयोग प्रतिवेदन तैयार करने के समय जो भूमि नहीं बोयी गयी होती है परन्तु पूर्व के वर्ष में बोयी हुई होती है, नई परती कहलाती है (Noor Mohammad, 1992, P.157)। यह कृषिगत भूमि ही है, जिसे केवल वर्तमान या चालू फसली वर्ष में परती रखा जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी पौधशाला वाले क्षेत्र को उसी वर्ष पुनः किसी फसल के लिये प्रयोग नहीं किया जाता है, तो उसे नयी परती या चालू परती कहा जाता है। जब कृषि में आधुनिक कृषि प्रविधियों विशेषकर सिंचाई व रासायनिक उर्वरकों का समावेश नहीं हुआ था, और जनसंख्या का दबाव कम था तो उस समय किसान कुछ खेत को एक फसली वर्ष के लिये परती छोड़ देते थे, ताकि उसमें उर्वरता व नमी संचित हो सके। आर्थिक विपन्नता, श्रम के अभाव, बाढ़, सूखा आदि कारणों से न किसी वर्ष न बोयी जा सकने वाली भमि भी नयी परती भूमि की श्रेणी में शामिल की जाती है (Chandel,1991, P.77)। परती या पड़ती या पड़त का अर्थ पड़ी हुई या या ज्यों का त्यों यथावत बनी रहने से है। चूंकि ऐसी भूमि पर एक साल के लिये कृषि कार्य नहीं करते हुए उसे ज्यों का त्यों पड़ा रहने दिया जाता है इसीलिये उसे पड़ी हुई, या परती या पड़त भूमि कहा जाता हैं। आज भी जिन क्षेत्रों में आधुनिक कृषि तकनीकों का विकास–विस्तार नहीं हो सका है, कृषि प्रकृति के भरोशे है, वहाँ कृषि की परती पद्धति प्रचलित है। देश के प्रमुख कृषि प्रधान क्षेत्र विशेषकर गांगेय मैदान जहाँ जनसंख्या का भारी दबाव है, और सिंचाई, रासायनिक उर्वरक यन्त्रीकरण आदि आधुनिक तकनीकों का विस्तार हो चुका है, में खेत को परती छोड़ने की प्रवृत्ति अत्यल्प होगयी है।

8. पुरानी परती भूमिः–

पुरानी परती भूमि के अन्तर्गत वह भूमि आती है, जो पहले कृषि के अन्तर्गत थी, परन्तु अब अस्थायी रूप से एक वर्ष से अधिक व पांच वर्ष से कम अवधि परती पड़ी हुई है, उसपर कृषि नहीं की जाती है। भूमि का खेती से बाहर होने के कई कारण हो सकते हैं, यथा–कृषकों की गरीबी, पानी की अनापूर्ति या अपर्याप्त आपूर्ति, विषम जलवायु, नदी एवं नहरों की भूमि का होना, तथा कृषि का अलाभकारी होना आदि। दूसरे शब्दों में पुरानी परती भूमि ऐसी समस्त भूमियों का द्योतक होती है, जिस पर कृषि की गयी होती है, परन्तु अस्थायी तौर पर एक वर्ष से अधिक और 5 वर्ष से कम अवधि तक नहीं बायी गयी होती है। इतने लम्बे समय तक भूमि का न बोया जाना प्रमुखतः कृषकों के पास आर्थिक साधनों की कमी, बाधित एवं अविश्वसनीय जलापूर्ति तथा कृषि का अलाभदायक होना है।

9. शुद्ध बोया गया क्षेत्र

शुद्ध बोये गये क्षेत्र का तात्पर्य कृषिगत भमि के उस भाग से है, जो किसी फसली वर्ष में वास्तव में बोया गया हो। इसीलिये इसके लिए शुद्ध फसलगत भूमि, शुद्ध बोयी गयी भूमि या शुद्ध कृषित भूमि शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। साथ साथ इसमे ऐसी भूमि भी शामिल की जाती है जिसमें फसल चक्र के रूप में घास उगायी गयी हो। शुद्ध बोयी गयी भूमि सम्पूर्ण क्षेत्रफल तथा भूमि उपयोग के शेष सभी (श्रेणी 1 से 8 तक) श्रेणियों की भूमि के योग के अन्तर का द्योतक होती है। इस प्रकार इस श्रेणी में फसल तथा फसलोत्पादन के रूप में शुद्ध बोये गया क्षेत्र सम्मिलित किया जाता है। ज्ञातव्य है कि एक बार से अधिक बोये गये क्षेत्र की गणना भी एक बार ही की जाती है। यह कुल बोये गये क्षेत्र से कम होता है, क्योंकि कुल बोया गया क्षेत्र शुद्ध बोये गये क्षेत्र तथा एक बार से अधिक बोये गये क्षेत्र का योग होता है।

भूमि उपयोग के अन्तर्गत शुद्ध बोये गया क्षेत्र भूमि उपयोग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। कृषि प्रधान देश यथा भारत के लिये शुद्ध बोये क्षेत्र का विशेष महत्व है, क्योंकि कृषि उत्पादन इसी श्रेणी की भूमि पर आधारित होता है। निरन्तर तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की वृद्धिमान खाद्य एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शुद्ध बोये गये क्षेत्र में वृद्धि तात्कालिक आवश्यकता है। देश के कृषि प्रधान क्षेत्रों शुद्ध बोये गये क्षेत्र में अभिवृद्धि की सम्भावना या गुंजाइश नहीं है, क्योंकि शुद्ध कृषिगत क्षेत्र अपनी अधिकतम सीमा तक पहुँचने के बाद अब ह्रासमान स्थिति में आ गया है। अतः इस भूमि का सम्यक और सुविचारित उपयोग अपरिहार्य है।

संदर्भ–

Anuchin, V.A., : Theory of Geography', in Directions in Geography, edited by Chorley, A.J., Nethuen London, Part-I, Chapter-3, pp. 52-54.

All India Soil & Land use Survey, (1970)

Barlowe, R. and Johnson, V.W., (1954): Land Problems & Policies, McGraw Hill Book Co., New York, p. 99.

Chandel,R.S. (1991): Agricultural Change in Bundelkhand Region, Star Publication, Varansi P.77

Giri, Harihar., (1976): Land Utilization Survey: Distt-Gonda, Shivalaya Prakashan, Gorakhpur, India, p. ix.

Land Record Manual, Allahabad (1960), p. 63.

Noor Mohammad (1992): Patterns of Agricultural Landuse in Ghaghara-Rapti ,Spatial Dymensions of Agriculture, Concept Publishing Company, New Delhi, P.157½A

NRSA (1995): Report on Area Statistics of Land Use / Land Cover Generated Using Remote Sensing Techniques, Land Use, Cartography & Map Printing Group. NRSA Hyderabad, p. 21.

NATMO (1980): Departmemnt of Science & Technology, Goverment of india.

Singh, J. (1997): Sustainable Landuse, Gramin Samvikas Sansthan, Gorakhpur, P.02

Singh Jasbir (1974): An Agricultural Atlas of India : A Geographical Analysis. Vishal Publications, Kurukshetra, P105

Vennzetti, C., (1972): Land Use and Natural Vegetation in International Geography, Edited by W.Peter Adams & Fredrick M. Melleiner, Toronto University Press, pp.1105-1106.

Yadav, H Lal (1991): Land Cover Classification System in India, Uttar Bharat Boogol Patrika, Vol. 30, No.1, P45

करुणेश प्रताप (2000): सामान्य भूमि उपयोग एवं कृषि भूमि उपयोग, http:hindi.indiawaterportal.org, पृ0 5,

वर्मा, एस.एस., (1997): वन विनाश का अभिप्रेरक कृषि विकास : गोरखपुर परिक्षेत्रीय तराई का अध्ययन, जगदीश सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक –संधृत भूमि उपयोग (पूर्वी उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में), पृ0 24–32.

लीलावती (2001): गण्डक नहर क्षेत्र उ0प्र0 में आर्द्र भूमिः स्वरूप एवं प्रबन्धन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, पृ0 84